एड्स के लिए टीका

मिथक और यथार्थ

ज़्यां लुई एक्सलर

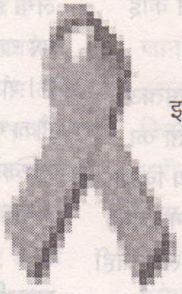

एड्स मिथकीय ऊंचाइयों को छूने लगा है। यह एक थ्रिलर सा बन गया है: यह मानव अस्मिता के लगभग हर पहलू को स्पर्श करता है - जीवन और मृत्यु, प्यार और नफरत, यौन और खून, मातृत्व और प्रसव, नैतिकता व प्रतिकार की धारणा, गलत-सही के फैसले। एड्स समाज के सबसे जोखिमग्रस्त, बदनामशुदा और हाशिए के तबकों के साथ-साथ सबसे ग्लैमरस व विशिष्ट तबकों को भी प्रभावित करता है। व्यक्तियों और परिवारों पर इसके प्रभाव के अलावा एड्स का व्यापक सामाजिक असर भी है। इसकी वजह से सामाजिक उथल-पुथल, आर्थिक बोझ के बढ़ने तथा आम स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई तरक्की के खटाई में पड़ने की आशंकाएं भी हैं।

कई लोगों के लिए एड्स एक बीमारी ही नहीं बल्कि मानव अधिकारों और मूल्यों का भी सवाल है। इसीलिए यह ऐसी भावनाओं को जन्म देता है जो शायद ही किसी अन्य बीमारी के साथ सामने आती हों। बतौर एक वैज्ञानिक मैं इस महामारी के इन मानवीय पहलुओं को नकार तो नहीं सकता मगर लोगों से आग्रह करूंगा कि एड्स के विज्ञान को विज्ञान की तरह देखें, मिथक की तरह नहीं। हमें अपनी बढ़ी हुई अपेक्षाओं को भी छोड़ना होगा और भय के अतिरेक को भी त्यागना होगा ताकि हम यथास्थिति से निपट सकें। मेरे विषय, एच.आई.वी. टीके के क्षेत्र में स्थिति यह है - टीका बनाना निश्चित तौर पर सम्भव है और सम्भवतः एक 'कारगर' टीका अगले दस सालों में खोज लिया जाएगा। सोचना यह है कि इसके लिए अनुसंधान के प्रति किस तरह का संकल्प ज़रूरी है और इस बात को भी स्पष्ट रूप से समझना होगा कि 'कारगर' टीके से हमारा आशय क्या है?

चुनौतियों का आकलन

शुरुआत में एड्स वायरस के टीके के विकास की वैज्ञानिक चुनौतियों को बहुत कम आंका गया था। शेखचिल्ली सोच के धनी कुछ अमरीकी (और युरोपीय) वैज्ञानिक मीडिया व आम जनता के बीच झूठी आस जगाने को आतुर थे (मसलन 1980 के दशक के मध्य में कुछ वैज्ञानिकों ने दावा किया था कि 3-5 साल में एड्स का टीका तैयार हो जाएगा)। कभी-कभी मात्र दिखावे के लिए ऐसे दावे किए गए तो कभी-कभी यह दर्शाने के लिए किए गए कि विज्ञान इंसानों की किसी भी उम्मीद को पूरा कर सकता है।

इसकी प्रतिक्रिया में कुछ लोग दूसरी अति पर चले गए थे। इन लोगों ने दावा किया था कि इस प्रयास में सफलता असम्भव है और शायद यह प्रयास भी खतरनाक है। पश्चिमी देशों में इन अंधाधुंध वायदों और फूहड़ भय के बीच कुछेक लोग ही यह देख पा रहे थे कि विकासशील देशों में यह महामारी किस गति से बढ़ रही है। और जो लोग इस बारे में सोच रहे थे उनकी दलील यह थी कि इस टीके का न तो कोई बाज़ार है और न ही इन्फ्रास्ट्रक्चर है। फिर क्यों इसमें सिर खपाया जाए?

विकासशील देशों के शोधकर्ता और स्वास्थ्य अधिकारी